ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

छायावाद के सांस्कृतिक पुनरुत्थानवादी साहित्य का प्रभाव

कुमुद रंजन मिश्र

शोधार्थी, हिंदी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (ऊ.प्र.)
संपर्क : (+91) 6232267077
kumudranjanm1@gmail.com

छायावाद, हिंदी साहित्य और विशेषकर कविता से जुड़े सुधियों के लिए कोई अपरिचित शब्द नहीं है। आज एक सदी बाद जब हम छायावाद पर बात कर रहे हैं तो हमारे सामने बहुत सी ऐसी घटनाएं हैं, नये ऐतिहासिक तथ्य हैं जिनके मार्फ़त छायावाद और छायावादी कविता की व्याख्या की जा सकती है और की जा रही है। ज्ञान के किसी भी अनुशासन में जैसे-जैसे चीजों को देखने परखने की नयी-नयी प्रविधियां विकसित होती जाती हैं, ज्ञान के पूर्ववर्ती स्रोतों का पुनर्मूल्यांकन उन प्रविधियों के ज़रिए होता रहता है। और इस तरह ज्ञान का स्वरुप कभी-कभी तो अपने पूर्ववर्ती रूप से गुणात्मक तौर पर बदल जाता है। छायावाद को इस नज़रिए से भी देखा जाना चाहिए। मैं छायावाद के जिस पहलू पर अपनी बात रखना चाह रहा हूँ वह उसके सांस्कृतिक और पुनरुत्थानवादी प्रभाव से जुड़ा है।

छायावाद आधुनिक हिंदी साहित्य धारा का बहुत महत्त्वपूर्ण काव्यान्दोलन रहा है और जैसा कि हम जानते हैं कोई भी आंदोलन स्वतंत्र नहीं होता है उसके मूल में बहुत सी सहायक शक्तियां काम कर रही होती हैं। छायावादी कविता ने भी पूर्ववर्ती परिस्थितियों से आकार पाया है। छायावादी कविता के तमाम स्वर उन्हीं परिस्थितियों का परिणाम थे। छायावाद का एक स्वर, जिस पर प्रायः हम कम बातचीत करते हैं, पुनरुत्थानवादी या सांस्कृतिक पुनरुत्थानवादी है। इस विषय पर बातचीत करते हुए पहले हम पुनरुत्थानवाद और हिंदी का जो नवजागरण है उस पर बातचीत करते हुए फिर अपने मुख्य विषय पर आयेंगे।

भारतीय नवजागरण की घटना ठोस – ठोस 19वीं सदी की और विशेष रूप से 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध की घटना है। भारत में इसके मुख्य तीन केंद्र रहे हैं बंगाल, महाराष्ट्र, और

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

केरल। आप देखेंगे की बंगाल में राजा राममोहन राय 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना कर चुके हैं और बाद में केशवचंद्र सेन और अन्य लोग प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि की स्थापना करते हैं। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले हो चुके हैं। और केरल में अय्यंकाली होते हैं। ये तमाम लोग अपने समाज को बदलने में प्रमुख योगदान देते हैं। किंतु यहाँ यह स्पष्ट करना ज़रूरी है कि बंगाल के नवजागरण में तथा महाराष्ट्र और केरल के नवजागरण में बुनयादी अंतर है। सीधे-सीधे कहा जाए तो महाराष्ट्र और केरल का नवजागरण व्यापक समाज सुधार से जुड़ा जिसका उद्देश्य ठोस सामाजिक परिवर्तन करना है, जबकि बंगाल का नवजागरण वर्ण विशेष की स्त्रियों की सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूलन से जुड़ा है और उसका उद्देश्य ठोस सामाजिक परिवर्तन नहीं है। भौगोलिक रूप से नज़दीक होने के कारण हिंदी समाज बंगाल नवजागरण से प्रभावित है। यही कारण है कि हिंदी पट्टी में जिस नवजागरण और समाज सुधार की बात हम करते हैं वह भी ठोस सामाजिक परिवर्तन की बात नहीं करता। वह तथाकथित उच्च वर्ग की स्त्रियों के सामाजिक स्थिति के अनुकूलन की बात करता है। एक उदाहरण देखिये भारतेंदु 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो' शीर्षक निबंध में लिखते हैं –

"लड़कियों को भी पढ़ाइये लेकिन इस चाल से नहीं जैसे आजकल पढ़ाई जाती है जिससे उपकार के बदले बुराई होती है ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिये कि वह अपना देश और कुल धर्म सीखें, पति की भक्ति करें और लड़कों को सहज में शिक्षा दें।"[i]

यही वजह है कि हिंदी पट्टी में नवजागरण को लेकर अब तक बहस चल रही कि वह नवजागरण है या नवजागरण का केवल भ्रम है। वास्तव में हिंदी पट्टी में जिन-जिन घटनाओं को नवजागरण के संकेत के रूप में ग्रहण किया जा रहा था उन सब के मूल में पुनरुत्थानवाद था। यहाँ स्पष्ट करते चलें कि पुनरुत्थानवाद मध्यकालीन सामाजिक - राजनीतिक मूल्यों की वकालत करती हुई विचार-व्यवस्था है । इस पुनरुत्थानवादी चेतना को हम सामाजिक संगठनों में देख सकते हैं, भाषा में देख सकते है उस समय की घटनाओं में देख सकते हैं।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

आप देखिये की 'आर्य समाज' की बात होती है भारतीय समाज की बात नहीं। यह देखना गौरतलब होगा कि "आर्य समाज" के नागरिक भारतीय समाज' के नागरिक अधिकारों के अधिकारी है या नहीं? और यह भी कि नवजागरण सिर्फ आर्य समाज के लिए है या भारतीय समाज के लिए भी प्रतिबद्ध और क्रियाशील है। आप गौर करने पायेंगे कि आर्य समाज खुद को भारतीय समाज के उप-इकाई के रूप में न प्रस्तुत करके भारतीय समाज के समानांतर इकाई के रूप में प्रस्तुत होती है और कहने की बात नहीं कि यही सारी घटनाएँ साहित्य में भी घट रही थी इसे हम 'भारत-भारती' के इस उदाहरण से समझे -

'हम कौन थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी'[ii]

यहाँ किस 'हम' की बात हो रही है ? क्या ये 'हम' भारतीय नागरिक हम है ? या कोई और हम है? इसका जवाब कविता के पहले पद्य में मिलेगा।

"भारत-भवन में **आर्यजन** जिसकी उतारें आरती"[iii]

यहाँ हम 'आर्य' है। अब इस पंक्ति को हम ध्यान से देखेंगे तो यहाँ जो अनुपस्थित है वह अनार्य है और यह समझना भी मुश्किल नहीं है कि जो वैष्णव और शैव नहीं है, जो हिन्दू नहीं है वे सब के सब अनार्य हैं। इस तरह से सहीं-सहीं अर्थों में जो मुसलमान है वह अनार्य है, जो ईसाई है वह अनार्य है, जो आदिवासी है वह अनार्य है और जो दलित समाज है वह अनार्य है और पुनरुत्थानवाद इन्हीं अनार्य संस्कृतियों के विरुद्ध खड़ी विचार सरणियाँ हैं।

हम सब जानते हैं कि कोई भी रचनात्मक लेखन कोई भी काव्य या साहित्यिक आंदोलन अपनी भाषा परंपरा से विछिन्न होकर नहीं खड़ा होता ऐसे में छायावादी कविता के भी आतंरिक सूत्र हिंदी कविता के किसी न किसी पूर्ववर्ती या पारंपरिक मूल्यों से अवश्य ही संबंध रखती है। यदि रहस्यवाद को हम पश्चिम या बांग्ला साहित्य के आंदोलनों से अर्जित किया हुआ मूल्य मान भी लें तब पर भी तमाम हिंदी छायावादी प्रवृत्तियां पूर्व छायावादी मूल्यों और प्रवृत्तियों को लेकर ही आगे बढ़ती है। छायावाद का पुनरुत्थानवादी चरित्र इन्हीं अर्थों में अपनी भाषा परंपरा का मूल्यात्मक निर्वहन करती है।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

असल में छायावादी कविता रुपी भवन की नींव भारतेंदु युग और द्विवेदी युग में डाली जा चुकी थी चाहे भाषा की बात करें या कथ्य की। हम बारी-बारी से दोनों पर बात करेंगे। भारतेंदु युग से छायावाद तक कविता की भाषा में एक बड़ा परिवर्तन होता नज़र आता है यह परिवर्तन अपने मूल में पुनरुत्थानवादी राजनीति से प्रभावित है और इस परिवर्तन को बारीकी से समझने की ज़रूरत है। एक तो उस समय हिंदी-उर्दू का विवाद चल रहा था। यह विचारणीय है कि कैसे लिपि का विवाद एक भाषा को दो रूपों में बाँट देता है। कैसे मतरुकात का सिद्धांत काम कर रहा है। कैसे भाषा साफ़-साफ़ गढ़ी जा रही है और इसमें पुनरुत्थानवाद कैसे काम कर रहा है इस उद्धरण से समझिये -

"द्वितीय उत्थान के समाप्त होते - होते खड़ी बोली में बहुत कुछ कविता हो चुकी थी। इन 25 -30 वर्षों के भीतर वह बहुत कुछ मंजी, इसमें सन्देह नहीं, पर इतनी नहीं जीतनी उर्दू काव्य के भीतर जाकर मंजी है। जैसा कि पहले कह चुके हैं, हिंदी में खड़ी बोली के पद्य प्रवाह के लिए तीन रास्ते खोले गये– उर्दू या फारसी की बाहों का, संस्कृत के वृत्तों का और हिंदी के छंदों का। इसमें से प्रथम मार्ग का अवलंबन तो मैं नैराश्य समझता हूँ...।"[iv]

द्वितीय उत्थान का तात्पर्य द्विवेदी युग से है। अब देखिये एक तरफ तो हम मान रहे हैं की उर्दू के साथ हिंदी मंज रही है किन्तु दूसरी तरफ उसकी बाँह पकड़ना नहीं चाह रहे हैं। यहीं हमारी पुनरुत्थानवादी मानसिकता स्पष्ट होती है। चूकि उर्दू का सम्बन्ध कथित अनार्य संस्कृति से है आर्य से नहीं, इसीलिए हमें संस्कृतनिष्ठ भाषा चाहिए। अब इस क्रम में छायावादी कविता की भाषा देखिये–

'हिमगिरी के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह'[v]
कौन तुम ? संसृति जलनिधि तीर तरंगों से फेंकी मणि एक,
कर रहे निर्जन का चुपचाप प्रभा की धारा से अभिषेक'[vi]

X X X

'छिन्न पात्र ले कम्पित कर में
मधु – भिक्षा की रटन अधर में'[vii] (प्रसाद)

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

X X X

'आज का तीक्ष्ण शर-विधृत क्षिप्र कर वेग प्रखर
शतशेल संवरण शील नील नभ गर्जित स्वर'[viii]

X X X

'ऊर्ध्व चन्द्र, अधर चन्द्र,
माझ मान मेघ मन्द्र।
क्षण-क्षण विद्युत् प्रकाश,
गुरु गर्जन मधुर भास'[ix] (निराला)

X X X

'इंदु दीप-से दग्ध शलभ शिशु!
शुचि उलूप अब हुआ बिहान'[x] (पंत)

क्या ये हमारी सामान्य बोलचाल की भाषा है ? आप छायावादी कविता को पढ़ते हुए पायेंगे कि सबसे ज्यादा इस तरह की भाषा जिसे हम संस्कृतनिष्ठ और तत्सम प्रधान हिंदी कहते हैं, का प्रयोग प्रसाद के यहाँ मिलेगा और यह भी नहीं कि यह केवल कविता में हो रहा है आप प्रसाद का गद्य भी देखें; उसकी जो वाक्य संरचना, उनका जो शब्द चयन है वह पूरी तरह से तत्सम प्रधान है। प्रसाद के नाटकों और कहानियों में जो चरित्र हैं जो नायक हैं उन सब को देखिये। अब उसी के सामानांतर प्रेमचंद का गद्य देखिये कैसे लोक से मिलता-जुलता चरित्र है, लोक से मिलती-जुलती भाषा है। दूसरी तरफ छायावाद की भाषा की भाषा देखें यह हमारी बोलचाल की भाषा से बहुत अलग है। क्या छायावादी कवि जन-सामान्य के लिए लिख रहे थे? हिंदी कविता में अब तक दो बड़े आंदोलन हुए हैं एक भक्ति आंदोलन दूसरा छायावाद। एक ओर भक्ति आंदोलन की काव्य-भाषा देखिये जो संस्कृत के विरोध में लोक की ओर जाती है और दूसरी ओर छायावाद की काव्य-भाषा जो लोक से उठकर शास्त्र की ओर जाती है। इस परिवर्तन के पीछे जो मानसिकता काम कर रही है उस पर भी विचार करने की ज़रूरत है।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

हालाँकि यह बात मुझे पहले ही स्पष्ट कर देनी थी की भाषा और समाज का क्या अंतर्संबंध है खैर... भाषा जितना समाज रचती है उतना ही समाज भाषा को भी रचता है कहने का तात्पर्य यह कि भाषा और समाज एक दूसरे पर आश्रित भी हैं और एक दूसरे के पूरक भी हैं ऐसे में एक ऐसी साहित्य भाषा जिसका समाज लगभग पूर्णतः अनुपस्थित की अवस्था में है उस भाषा को एक बहुत बड़े समाज के साहित्य का वाहक मान लेना कहीं से भी तर्क संगत नहीं हो सकता। हम यदि गौर से देखें तो छायावाद की भाषा भी इसी कोटि की भाषा है, जिसका समाज मध्यकालीन मूल्यों का वाहक है और वह आधुनिक समय में भी मध्यकालीन समाज संरचना को बनाये रखने की ज़िद पकड़ कर बैठा है। इसे इस उदाहरण से समझें कि प्रसाद अपनी कविता 'प्रलय की छाया' में एक स्त्री के सतीत्व का जिस तरह से महिमा-मंडन करते हैं-

"पावक सरोवर में अवभृथ स्नान था
आत्म-सम्मान-यज्ञ की पूर्णाहूति
सुना-जिस दिन पद्मिनी का जल मरना
सती के पवित्र आत्म गौरव की पुण्य-गाथा
गूँज उठी भारत के कोने कोने जिस दिन;

उन्नत हुआ था भाल
महिला-महत्त्व का।"[xi]

यह न केवल आधुनिक मूल्यों के खिलाफ जाता है बल्कि भारतीय नवजागरण के एक बहुत बड़े मुद्दे सती-प्रथा के विरुद्ध हुए संघर्षों को भी शर्मशार करता है जबकि मेरा मुख्य विषय छायावाद और पुनरुत्थानवाद के अंतर्संबंधो से जुड़ा है, ऐसे में 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'प्रलय की छाया' जैसी कविता मजबूत और स्पष्ट उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत है। यह कविता न सिर्फ स्त्री सन्दर्भ को लेकर ही मध्यकालीन मूल्यों की वाहक है बल्कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भारतीय मुस्लिमों के खिलाफ हो रहे ध्रुवीकरण को भी हवा देती है। यदि ऐसा नहीं है तो प्रसाद की वह कौन सी मजबूरी या विवशता है कि लगभग एक हजार वर्ष पहले मुग़लों के

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

आक्रमण (जिसे आगमन कहना उचित होगा) के सन्दर्भ में लोक प्रचलित कथाओं को एक हजार वर्ष बाद भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के लिए आवश्यक सामाजिक एका को तोड़ने के या फिर उसे विभक्त करके के देखने के लिए कवि मजबूर हुआ जा रहा है। इस तथ्य से मेरा इनकार नहीं है कि मुग़लों के आक्रमण से तत्कालीन भारतीय समाज की स्त्रियों को भयंकर शोषण, अपमान और लैंगिक हिंसा को झेलना पड़ा किन्तु अब, जब भारत में हिन्दू-मुसलमान को एक साथ रहते हुए हजारों वर्ष बीत चुकें हैं और एक गंगा-ज़मुनी तहजीब विकसित हो चुकी है और तीसरी शक्ति ब्रिटिश शासन से संघर्ष का समय आन पड़ा है ऐसे में मुस्लिमों को हिन्दुओं का दुश्मन बनाना और हिन्दुओं को मुस्लिमों के खिलाफ संघर्ष के लिए उकसाने वाली कोई भी व्यवस्था प्रथमतः और अंततः पुनरुत्थानवादी होगी फिर चाहे वह छायावादी कवि, प्रसाद की कविता 'प्रलय की छाया' के कंधे पर ही चढ़ कर क्यों न आये।

इन्हीं बातों को जरा और स्पष्ट रूप में समझने के लिए न सिर्फ निराला की तरफ चलते हैं बल्कि तनिक समकालीन भारतीय राजनीति की तरफ भी चलते हैं आपको संभवतः याद होगा कि ऐतिहासिक 2014 में 'रामराज्य' की स्थापना के पूर्व भारतीय जनता को यह बहुत जोर शोर से बताया गया कि हिन्दू धर्म खतरे में है और इसे यदि न बचाया गया तो जल्द ही हिन्दू जनता पर प्रलय की छाया मंडराने लगेगी। यह भी बहुत दिलचस्प है कि सन् 2015 में पुनरुत्थानवादी संगठन की पत्रिका 'चरैवेति' में छायावादी कवि निराला की कविता 'महाराज शिवाजी का पत्र' का कुछ अंश बहुत उत्साह के साथ पुनः प्रकाशित हुए उस पर एक लेख लिखा गया जिसकी पहली पंक्ति यह है –

"महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला छायावादी दौर के सबसे ओजस्वी व तेजस्वी कवि थे जिन्होंने अपनी रचनाओं में हिन्दू राष्ट्रवादी चेतना का निडरता और प्रखरता से उद्घोष किया।"[xii]

और अब इस तथ्य की प्रस्तुति के बाद भी हम यदि यह नहीं समझ पा रहे हैं कि छायावाद का एक मौलिक स्वर पुनरुत्थानवाद में भी प्रकाशित होता है तो माफ करें, मुझे यह कहना ही पड़ेगा कि हमारी चेतना पुनरुत्थानवादी शक्तियों की चपेट में है।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

सन् 1926 में छायावादी कवि निराला लिख रहे हैं –

'कैसी चाल चलता है रण में औरंगजेब

बहुरूपी रंग बदलता ही किया

साँकलें हमारी हैं

जकड़ रहा है वह जिनमें

हिन्दुओं के पैर

हिन्दुओं के काटता है सीस

हिन्दुओं की तलवार ले'[xiii]

अब इस उद्धरण को यदि हम ध्यान से देखें तो यह ऐतिहासिक 2014 के पहले जोर शोर से कहे गये वाक्य 'हिन्दू धर्म खतरे में है' या फिर 'हिन्दुओं पर अत्याचार बढ़ गया है' से जैविक रूप से भिन्न नहीं है। जैसा कि पहले ही बताया गया इस कविता के प्रथम प्रकाशन 1926 और 2015 के प्रकाशन के समयों के मध्य की समानता को समझना बहुत ही अर्थवान होगा यह दोनों ही समय न सिर्फ पुनरुत्थानवादी रहे हैं बल्कि बहुत से सन्दर्भों में प्रतिक्रियावादी भी रहे हैं। इन दोनों समयों में अचानक से महाराणा प्रताप हिन्दू जनता के नायक के रूप में प्रकट होते हैं और अचानक से ही हिन्दू जनता खतरे में भी पड़ जाती है। फिर तो हिंदी साहित्य बड़ी तत्परता से 'प्रलय की छाया' का रेखांकन भी करती है और महाराणा प्रताप को गुहार भी देती है।

छायावादी कविता जो स्वतंत्रता आंदोलन के लगभग साथ-साथ खड़ी होती है, को हिंदी-भाषा-समाज का सबसे बड़ा साहित्यिक आंदोलन मान लेना और घोषित कर देने से एक समस्या यह भी उभर कर आती है कि हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि छायावाद में हिंदी-भाषा-समाज के बहुत से सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों को न सिर्फ विघटित किया बल्कि जाने अनजाने उनके संभावित प्रवाह को भी बाधित किया। यह वह प्रभाव है जो उपरी तौर

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 15 July 2020

पर हमें दिखाई नहीं देता किन्तु इसे समझना हो तो महाराष्ट्र नवजागरण और केरल नवजागरण के साहित्यिक संदर्भों से समझ सकते हैं जहाँ कविता आंदोलन प्रगतिशील और आधुनिक मूल्यों का वाहक बन रही है। सभ्यता और समाज को नयी दिशा दे रही है न कि प्रतिक्रियावादी और पुनारात्थान्वादी शक्तियों के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर चल रही है।

निष्कर्षतः हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि छायावाद हिंदी साहित्य का महत्त्वपूर्ण काव्यान्दोलन रहा है लेकिन बकौल हजारी प्रसाद द्विवेदी एक अध्येता को न तो लोक से डरना चाहिए, न तो शास्त्र से। इसी वाक्य से साहस पाते हुए मैं कहना चाहता हूँ कि आधुनिक हिंदी कविता के सबसे बड़े आंदोलन का एक मौलिक स्वर पुनरुत्थानवाद और प्रतिक्रियावाद में भी दृष्टिगोचर होता है। छायावाद के सौ साल बाद यही ठीक समय है कि हम अपने इस महत्त्वपूर्ण काव्यान्दोलन की कमियों की शिनाख्त करें और अपने साहित्य को अधिक स्वस्थ बनायें।

---

[i] https://www.hindisamay.com/content/4725/1/भारतेंदु-हरिश्चंद्र--निबंध-भारतवर्षोन्नति-कैसे-हो-सकती-है.cspx
[ii] गुप्त, मैथिलीशरण, भारत-भारती, साहित्य-सदन प्रकाशन, झाँसी, 1984, पृष्ठ - 4
[iii] गुप्त, मैथिलीशरण, भारत-भारती, साहित्य-सदन प्रकाशन, झाँसी, 1984, पृष्ठ - 1
[iv] शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ - 449
[v] प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2012, पृष्ठ -13
[vi] प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2012, पृष्ठ -25
[vii] प्रभाकर, विष्णु- रमेशचंद्र शाह, प्रसाद रचना संचयन, साहित्य अकादेमी, 2015, पृष्ठ - 92
[viii] शर्मा, रामविलास (सं.), राग-विराग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012, पृष्ठ - 92
[ix] शर्मा, रामविलास (सं.), राग-विराग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012, पृष्ठ - 184
[x] (पुनरुधृत) शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ - 486
[xi] प्रभाकर, विष्णु- रमेशचंद्र शाह, प्रसाद रचना संचयन, साहित्य अकादेमी, 2015, पृष्ठ - 108
[xii] शुक्ल, जायराम, चरैवेति, जनवरी 2015, पृष्ठ - 34
[xiii] नवल, नंदकिशोर (सं.), निराला रचनावली-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983, पृष्ठ - 152

Copyright @ 2020 Authors